| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com|

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

समकालीन कविता में आदिवासी विमर्श

Dr. Sudhir Soni

Associate Professor, Dept. of Hindi, Government PG College, Malpura, Tonk, Rajasthan, India

सार

हिन्दी कविता के व्यापक परिदृश्य पर दृष्टिपात करने पर आदिवासियों जीवन संघर्ष पर केन्द्रित कविताओं का अकाल सा दिखाई पड़ता है। यह नीरसता यहाँ तक परिलक्षित होती है कि आदिवासी समुदाय को जाने या समझाने के लिए कविता के रास्ते से होकर गुजरना चाहे तो निराशा हाथ लगाती है। किन्तु आदिवासियों द्वारा आदिवासी जीवन संघर्षों को लेकर लिखी कविताएँ नया रास्ता दिखाती है। आदिवासी कविताओं में मूल स्वर पहचान के संकट को लेकर जद्दोजहद है। वैश्विक परिदृश्य में यह सांस्कृतिक संकट के रूप में सुरसा की तरह मुँह बाएँ खडा है। सब कुछ निगल जाना चाहता है। आधुनिकता के बघनखे में नुचते समुदाय के सामने विकास का दानव आदिवासी जीवन के मुख्य आधार जल, जंगल, जमीन और जोरू को निगल जाना चाहता है। महादेव टोप्पो की कलम प्रतिरोध के साधन गढ़ती है। आदिवासी समुदाय की सामुदायिकता ही उसकी पहचान है अब पहचान का संकट है तो इस संकट से उबरने का रास्ता भी सामुदायिक शक्ति से निकलेगा --

"यह है सबसे बड़ा खतरा कि हम अपनी पहचान

खो रहे हैं खो रहे हैं कि हम अपने स्वाभाविक

स्वर न मिमिया रहे न गरज रहे हैं इसी

कारण ऊंची अट्टालिकाओं में पंखों के नीचे

हमारी असमर्थता पर मुस्करा रहे हैं

इसलिए मित्र आओ हम पहले अपने कंठो

में गरजती हुई आवाज भरे। " 'सबसे बड़ा खतरा'- महादेव टोप्पो -आदिवासी स्वर और शताब्दी

परिचय

'सबसे बड़ा खतरा' कविता में कवि महादेव टोप्पो आदिवासी समुदाय को संगठित और शिक्षित करने का आवाहन करते है। आदिवासियों को अन्याय, अत्याचारों के विरुद्ध उसे स्वयं लड़ाई लड़नी होगी तभी उनके जीवन उपेक्षित बदलाव या परिवर्तन संभव हो पायेगा। आदिवासी संस्कृति और समाज, आदिम जातियाँ या आदिम समाज नहीं है, उससे भिन्न सभ्यता और संस्कृति का समाज है। "जिस साहित्य में प्रकृति की लय-ताल और संगीत का अनुसरण नहीं हो, संपूर्ण जीव जगत की अवहेलना हो, जो धनलोलुप और बाजारवादी हिंसा और लालसा का नकार नहीं करे, जहाँ सहानुभूति, स्वानुभूति के बजाय सामूहिक अनुभूति का प्रबल स्वर-संगीत हो और जो मूल आदिवासी भाषाओं में नहीं रचा गया हो वह आदिवासी साहित्य नहीं है।" ग्रेस कुजूर के शब्दों में "आदिवासी समाज न अपनी औरतों का अपमान करता है और न ही उनके साथ हिंसा से पेश आता है। वह दुनिया में सहअस्तित्व और सहजीविता का सबसे बड़ा पैरोकार है। लेकिन हिंसा और गैर बराबरी के खिलाफ डटकर खड़े इस आदिवासी समाज को ही खत्म करने की कोशिश हो रही है। इस आदिवासी दर्शन को विस्थापित करके दुनिया को बचाया नहीं जा सकता है।" आदिवासी कथा साहित्य में जल, जंगल, जमीन और जोरू का सवाल ऐसे ही नहीं उठता अपितु वह पूरी तरह से आदिवासी संस्कृति को आत्मसात कर रहा होता है।[1]

आदिवासी कवियों में महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, हरिराम मीणा, वाहरु सोनवणे, केशव मेश्राम, महादेव टोप्पो, अनुज लुगुन, रामदयाल मुंडा, सरिता बड़ाइक, डॉ.मंजु ज्योत्स्ना, दीनानाथ मनोहर आदि ने आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं, सामाजिक विद्रोह, नारी का जीवन संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, आदिवासी न्याय व्यवस्था, विस्थापन, अस्तित्व की समस्या और अशिक्षा, व्यवस्था के शोषण-दमन को शब्दबद्ध किया है। आदिवासी कविता जीवन की भट्ठी में जलते समुदाय की त्रासद जीवन यात्रा की बानगी मात्र नहीं यह आदिवासी समुदाय के जीवन संघर्ष का दस्तावेजीकरण है –

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com|

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

हम मंच पर गए ही नहीं

और हमें बुलाया भी नहीं

उंगली के इशारे से

हमें अपनी जगह दिखाई गई

हम वही बैठे रहे

हमें शाबासी मिली

वे मंच पर खड़े होकर

हमारा दुःख हमसे ही कहते रहे

हमारा दुख हमारा ही रहा कभी उनका नहीं हो पाया

हमने अपनी शंका फुसफुसाई

वे कान खड़े कर सुनते रहे

फी ठंडी साँस भारी

और हमारे ही कान पकड़ कर हमें डाँटा

माँफी माँगों वरना ----स्टेज'- वाहरु सोनवणे आदिवासी स्वर और शताब्दी-रमणिका गुप्ता, पृ. 101

आदिवासी चिंतन आदिवासियों का तथाकथित सभ्य समाज के प्रति मुखर विरोध का स्वर है। जिसके मूल में विसंगतियों के प्रति प्रतिरोध का भाव है। आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। इसमें आदिवासियों की परंपरा, रूढ़ियां, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा है। लोककला, संगीत, नृत्य, संस्कृति, भाषा, बोली, लिपि आदि विभिन्न धरातलों पर आदिवासी लेखन एक व्यापक विमर्श का हिस्सा बन रहा है। साहित्य और कला, साहित्य और जीवन के बीच जो दीवारें समाज में खड़ी हैं, उन दीवारों का आदिवासी समाज में कुछ भी स्थान नहीं है। इन व्याख्याओं को बदलना जरूरी है क्योंकि आज आदिवासी समाज में कई प्रथाएं लोकगीत और नाटक तथा अनेक अन्य कलाएं विद्यमान हैं जिसे शब्दबध्द नहीं किया गया है। हजारों वर्षों से चली आ रही परंपराएं कभी थमी नहीं। वे परम्पराएं आज भी मौलिक रूप में आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग रही हैं। फिर इसे साहित्य कैसे नहीं कहेंगे। ऐसी दलीलें इस बात की आवश्यकता जता रही हैं कि आदिवासी साहित्य को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है। आदिवासी विमर्शकार डॉ. विनायक तुकाराम के अनुसार, "आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य उन वन जंगलों में रहने वाले वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर ही नहीं दिया गया। यह ऐसे दुर्लक्षितों का साहित्य है जिनके आक्रोश पर मुख्यधारा की समाज व्यवस्था ने कभी कान ही नहीं धरे। यह गिरि, कंदराओं में रहने वाले अन्याय ग्रस्तों का क्रांति साहित्य है। सदियों से जारी क्रूर और कठोर न्याय व्यवस्था ने जिनकी सैकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया, उस आदिम समूह की मुक्ति का साहित्य है- आदिवासी साहित्य।" आदिवासी साहित्य प्रकृति से जुड़े, सतत जीवन के अभ्यासी जंगलों में रहने वालीआदिम जातियों का साहित्य है। जिनका मूलस्वरूप अभी तक आधुनिक सभ्यता के कुहासे से दूर है। इसका कारण जीवन से जद्दोजहद समुदाय की ताकत है तो अपनी सभ्यता और संस्कृति को बचाए रखने की धुन इनकी पहचान है।[2]

निर्मला पुतुल आदिवासी स्त्री के जीवन संघर्ष और चेतना के साथ प्रति एकाग्रचित भाव से खड़ी है। उनके संस्कारों में संथाली आदिवासी समुदाय के लगभग 5000 वर्षों की थाती है। उनके शब्द जीवन के श्वास-प्रश्वास का शब्दांकन है। अनुभव का गझिन संसार है। शहरी संस्कृति के संपर्क में आने के बाद भी अपने मूल की थाती को संजोकर चलने की जिद है। यही जिद निर्मला पुतुल को निर्मला पुतुल बनाती है। जिसमें जीवन के जद्दोजहद की निर्झरनी सतत कलकल प्रवाहित है।[3] आदिवासी स्त्रियों की आत्मा को भावनात्मक श्रम के साथ उनके उपेक्षित हृदयों को और उसमें सुलगते प्रश्नों को शब्दों के माध्यम से वाणी देने का प्रयत्न किया है।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com|

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

आदिवासी पारिवारिक संरचना के बीच केन्द्रीय धूरी के रूप में उपस्थित आदिवासी स्त्री। परिवार के लिए हाड़तोड़ मेहनत कर अपना घर-परिवार चलाती है। आदिवासी स्त्री अपने हक़ की बात नहीं कर सकती क्योंकि हक़ जताना सिर्फ़ पुरुषों का अधिकार है--

"हक़ की बात न करो मेरी बहन

मत माँगो पिता की सम्पत्ति पर अधिकार

ज़िक्र मत करो पत्थरों और जंगलों की अवैध कटाई का

सूदखोरों और ग्रामीण डॉक्टरों के लूट की चर्चा न करो बहन

भरी पंचायत में डायन क़रार कर दण्डित की जाओगी। "1. नगाड़े की तरह बजते शब्द- निर्मला पुतुल, [3]

आदिवासी जीवन संघर्षों को शब्दबद्ध करती हुई रमणिका गुप्ता लिखती है "जंगल माफ़िया कीमती पेड़ उससे सस्ते दामों पर खरीदकर, ऊँचे दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी ही नीतियों के कारण आदिवासी ज़मीन के मालिक बनने के बजाए पहले मज़दूर बने फिर बंधुआ मज़दूर। "2.आदिवासी विकास से विस्थापन - रमणिका गुप्ता, पृ.12 आदिवासी स्त्री का जीवन लोहे के काँटों पर चलने सरीखा है। कभी-कभी ऐसा भी होता है की आदिवासी समुदाय के हित संरक्षण के लिए काम करने वाली सामाजिक संस्थाएँ जो आदिवासी समाज के हित में कार्य करती हैं उनकी नियत में भी खोट होता है। समाज सेवा करने निकले समाजसेवी कुछ ग्रामीण भागों में कार्य करने वाले अफ़सर, ठेकेदार, बिचौलिये आदिवासी श्रम एवं स्त्री का शोषण करने से नहीं चूकते। इन्हें प्रायः अशिक्षा, भय तथा भोलेपन का शिकार होना पड़ता है। कभी जंगल के अधिकारी, लेखापाल, सिपाही तो कभी राजनेता एवं ठेकेदार का शिकार होना पड़ता है। शिकार होना तो जैसे उनकी नियति है। वस्तु से भी बदतर स्थिति है कही भी किसी के द्वारा कुछ भी घृणास्पद, अमानवीय, त्रासद[4] --

"एक ऐसी चीज़

जिसे घाट में, बाट में

जहाँ मिले थाम लो

जब जी चाहे अंग लगा लो

पूरी हवस तो त्याग दो

न चीख न पुकार।" पहाड़ हिलने लगा है - वहारु सोनवणे, [4]

आदिवासी कविताओं का वितान विषय के वैविध्य के अटा पडा है। श्रुति-स्मृति की जबरदस्त व्यवस्था रही है। आदिवासी साहित्यकारों के लिए यह कथ्य-वस्तु का कोष है। जहाँ से जितना चाहो, सामर्थ्य भर सिक्त हुआ जा सकता है। मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा का लाभ आदिवासी रचनाकारों को मिला है। आदिवासी साहित्य की उस तरह कोई केंद्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य की आत्मकथात्मक लेखन है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक-सभी प्रमुख विधाओं में आदिवासी और गैर-आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन समाज की प्रस्तुति की है। आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है। 13 जनवरी 2013 की घटना जारवा आदिवासी महिलाओं को विदेशी पर्यटकों के सम्मुख नाचने के लिए मजबूर किया गया तथा उनकी अर्धनग्न तस्वीरें इंटरनेट पर अपलोड की गईं। [5]व्यापारी आदिवासी लड़कियों को बहला फुसलाकर भगा ले जाते हैं और उन्हें देह व्यापार हेतु झोंक दिया जाता है। आमतौर पर नाबालिग़ तथा ग़रीब परिवारों की लड़कियों को अपना शिकार बनाकर तस्कर सम्पन्न राज्यों में बेच देते हैं। झारखंड, असम, पश्चिम बंगाल जैसे पिछड़े राज्यों की गरीब लड़कियाँ गाय-बैल से भी कम क़ीमत पर बिक जाती है। "सरकारी और गैर-सरकारी सूत्रों के मुताबिक हरियाणा और पंजाब जैसे राज्यों में ग़रीब ख़ासकर आदिवासी लड़कियों की कीमत ५ हज़ार से १५ हज़ार रुपये तक है। "4. मुझे जन्म दो माँ-संतोष श्रीवास्तव, पृ.101 वस्तु का व्यापार बात समझ में आती है पर मनुष्य का व्यापार, खरीद-फरोख्त अंतरात्मा विद्रोह कर उठती है। निर्मला पुतुल ऐसे आदमखोरों के खिलाफ जबरदस्त प्रहार करती हैं। उनके शब्द के शब्द दरांती बन हिंसक जानवरों, मानवता के दुश्मनों पर प्रहार करती है। निर्मला पुतुल अपने शोषकों अत्याचारियों एवं तथाकथित संरक्षकों की बखिया उधेड़कर रख देती है जबरदस्त खबर लेती है –[5]

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com|

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

"ये वे लोग है जो दिन के उजाले में

मिलने से कतराते

और रात के अँधेरे में

मिलने का माँगते है आमन्त्रण

ये वे लोग हैं

जो हमारे बिस्तर पर करते हैं

हमारी बस्ती का बलात्कार

और हमारी ही ज़मीन पर खडे हो

पूछते हैं हमसे हमारी औक़ात। "5. नगाड़े की तरह बजते शब्द – [6]

विचार-विमर्श

आदिवासी जीवन में स्त्री की सामाजिक स्थिति के साथ-साथ आर्थिक स्थिति का सजीव वर्णन भी आदिवासी कविताओं के माध्यम से हमें देखने को मिलता है। रोटी इन आदिवासियों के लिए शायद पहला और आखिरी प्रश्न है और हमारे देश में तो भूखे लोगों को दिल्ली से यह कह कर दिलासा दिया जाता है - 'भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ'। आज पुरुषों की तुलना में स्त्री को कम मज़दूरी दी जाती है। हल जोतने से फ़सल काटने तक का कार्य आदिवासी स्त्री करती है। पत्तल बनाना, झाड़ू बनाना, चटाई बुनना, तेंदुपत्ता, महुआ चुनना उनका जीवन रोटी की खोज में भागता नज़र आता है। इसीलिए ग्रेस कुजूर 'क़लम को तीर होने दो' कविता में लिखती हैं –[6]

"ईटों के भट्टों में / सीझ गई ज़िंदगी

रोटी की खोज में कहाँ नहीं भागी। " 6. आदिवासी स्वर और शताब्दी - सं. रमणिका गुप्ता, पृ.26

गाँवों का देश भारत आज अपने मूल उत्स से षड्यंत्र के तहत उजाड़ा जा रहा है। जहाँ उसका मूल स्वरूप, भाषा-वाणी, रहन-सहन खानपान तो बाद में गायब होगा उसके पहले कुछ साधन या डर दिखाकर अस्मत लूट ली जा रही है\वन संरक्षण के नाम पर हम जंगल के मूल निवासी आदिवासियों के मालिकाना हक़ समाप्त करने पर तुले है। गैट समझौता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति, पेटेंट जैसे क़ानूनी अधिकार इस भूमंडलीकरण के युग में आदिवासियों को ग़ुलाम बनाने का कार्य कर रहे हैं।[7]

"अब तक अमेरिका और जापान द्वारा नीम के आठ उत्पादों पर पेटेंट का अधिकार प्राप्त कर लिया गया है। यदि भविष्य में अन्य औषधीय पौधों जिनके प्रयोग एवं इलाज पर अब तक आदिवासियों का नियंत्रण समाप्त हो जाएगा। "7.आदिवासी विकास से विस्थापन - रमणिका गुप्ता, पृ.47 तथाकथित आधुनिक विकास के देवता ने आदिवासियों के शोषण, भ्रष्टाचार, विस्थापन, पलायन और बेरोज़गार करने में अपनी तरफ से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ा है। आदिवासी महिलाएँ पलाश के पत्तों से पत्तलें, झाड़ू बनाकर अपना जीवन निर्वाह करती थी। आज तो प्लास्टिक युग है। हम उनका यह रोज़गार भी छीन रहे हैं। आकर्षक दिखने वाली प्लास्टिक की झाड़ू, दोने तथा थरमाकोल की पत्तलें हमारे सम्मुख हैं। इसीलिए निर्मला पुतुल 'बहामुनी' कविता में आदिवासी स्त्री की भूख और आर्थिक विवशता का चित्रण करते हुए लिखती हैं -

"तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते है पेट हज़ारों

पर हज़ारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट

कैसी विडम्बना है कि

ज़मीन पर बैठ बुनती हो चटाइयाँ

और पंखा बनाते टपकता है

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com|

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

तुम्हारे करियारे देह से टप... टप... पसीना। "8. नगाड़े की तरह बजते शब्द- [8]

आज भी हिन्दुस्तान के अन्दर पूर्ण लोकतंत्र नहीं है। आदिवासी जब अपनी समस्याओं को लेकर लोकसभा तथा विधानसभा तक पहुँचते हैं तो उनके साथ बर्बरता का व्यवहार किया जाता है। नागपुर के आदिवासी समुदाय ने अपनी मांगों को लेकर 2002 में मोर्चा निकाला। इस शांति से निकाले जाने वाले मोर्चे पर लाठी प्रहार किया गया। भीड़ तितर-बितर हो गई। मीडिया को बाद में मोर्चे वाले स्थान पर सूखी रोटी, हरी मिर्च, टूटे चप्पल., फटे कपडे के टुकडे मिले जिनसे सरकार को खतरा था। डॉ. भगवान गव्हाडे की 'आदिवासी मोर्चा' कविता –[7]

"संसद भवन के प्रांगण में,

जब पहुँच गया मोर्चा।

बरस पड़ी पुलिस कर्मियों की अनगिनत लाठियाँ,

जैसे झेली थी सीने में पूर्वजों ने अंग्रेज़ों की गोलियाँ

तितर-बितर हो गई भीड़

भागने लगी हमारी बहूँ-बेटियाँ

जैसे भगाई जाती हैं जंगल से मुर्गी, भेड़, बकरियाँ। "9. दलित अस्मिता – सं[9]

आदिवासी लेखन जीवन का लेखन है यह कल्पना और मनोरंजन का क़िस्सा नहीं है और न ही आदिवासी औरतें नुमाइश की वस्तु है। वे दर्द सहने की आदी हैं उनका जीवन कठोर संघर्ष की गाथा कहता है किन्तु मुक्ति की बैचेनी तो उनमें भी है-

मेरी सोच के भीतर

अचानक बज उठा है राष्ट्रगान

और मैं खड़ा हूँ[8]

राष्ट्रद्रोही कहलाने के डर से

सावधान की मुद्रा में।

ठीक इसी समय दीमकों का झुंड

घुस आया है मेरे भीतर

मेरी देह को मिट्टी का टीला समझ

खोखला करता हुआ मुझे

और मैं चीखने में असमर्थ

खड़ा हूँ सावधान की मुद्रा में।। राष्ट्रगान बज रहा है- जसिन्ता केरकेट्टा[10]

मुगलों एवं अंग्रेज हुकूमत के खिलाफ आदिवासी समुदाय ने निजता की रक्षा के लिए समय-समय पर अपने विरोध के स्वर मुखर किए है। अस्तित्व और अस्मिता का संकट आदिवासी समुदाय का सबसे बड़ा संकट है। आदिवासियों ने अपने-अपने भू-भाग में अपने हकों, अधिकारों और अस्तित्व की लड़ाई के लिए विभिन्न विद्रोह किए। अंग्रेजों, साहुकारों, महाजनों, जमीनदारों और सुदखोरों के अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आंदोलन किए। झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र में पहचान का आंदोलन भी शुरु हुआ था। जिनमें संथाल हुल विद्रोह, उलगुलान, बस्तर की लड़ाई, पूर्वोत्तर का पहचान का आंदोलन जैसे विभिन्न आंदोलन हैं। आज अधिकतर आदिवासी साहित्य के प्रेरणा स्रोत बिरसा मुंडा, सिद्धो-कानू, तिलका माँझी, टंट्या भिल, कालिबाई, झलकारी बाई जैसे तमाम क्रांतिकारी हैं।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com |

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

आदिवासी निगाहें अब उन लोगों को पहचानने लगी हैं जो आदिवासी स्त्रियों को वस्तु मानते आए हैं और आदिवासी समाज को सस्ता मज़दूर बनाकर उनकी संस्कृति, भाषा, जल, जंगल, ज़मीन एवं जोरू को हथिया कर उन्हें उनके मूल से नेस्तनाबूत करने पर तुले है।[9]

परिणाम

उत्तर औपनिवेशिक विमर्शों में स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के साथ ही साथ आदिवासी विमर्श भी आज साहित्य एवं समाज के लिए चर्चित विषय बना हुआ है। सदियों से आदिवासी समाज को एक पिछड़ा समाज माना ग या। उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया गया। किन्तु भूमंडलीकरण के दौर में आज शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने से आदिवासी समाज में भी जागृति आई है। आज वे अपने जीवन एवं साहित्य को प्रमुख रूप से जनता के समक्ष लाना चाहते हैं। आदिवासी समाज के लोगों का अन्य समाज के लोगों से मिलना-जुलना बढ़ा है। आज आदिवासी साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है, जिससे आदिवासियों के प्रति लोगों का नजरिया बदल रहा है। 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' इसलिए जैसा समाज होगा उसी प्रकार का साहित्य रचा जाएगा। "*आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह प्रकृति का सहयोगी, सहअस्तित्व का अभ्यस्त, ऊँच-*[10][11]*नीच, भेदभाव व छल कपट से दूर है। वह जमाखोरी या सम्पत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सबकी अभिव्यक्ति है। जीवन की समस्याएँ और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है।*"[1]

आदिवासी जीवन और साहित्य पर साहित्य की हर विधा में लेखन कार्य हो रहा है। किन्तु साहित्य की सबसे प्राचीन विधा कविता में आदिवासी स्वर की व्यापकता प्रमुख रूप से देखी जा सकती है। वर्तमान समय में बहुत से कवियों/कवयित्रीयों ने अपने काव्य का विषय आदिवासी जीवन को बनाया है, उनमें से कुछ नाम प्रमुख हैं- वाहरू सोनवणे, महादेव टोप्पो, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, मधु कांकरिया, रमणिका गुप्ता, हरिराम मीणा, वामन शेलके, विनायक तुकाराम, भुजंग मेश्राम आदि। आदिवासी लेखन की उभरती चेतना का सबसे सटीक और सही चित्रण हमें वाहरू सोनवणे की 'स्टेज' नाम की कविता की इन पंक्तियों में मिलता है-

"***हम स्टेज पर गए ही नहीं/जो हमारे नाम पर बनाई गई थी/***
हमें बुलाया भी नहीं गया/ऊँगली के इशारे से/हमारी जगह दिखा दी गई/हम वहीं बैठ गए/हमें खूब शाबासी मिली/और वे स्टेज पर खड़े होकर/हमारा दुःख हमें ही बताते रहे 'हमारा दुख अपना हीं रहा/जो कभी उनका हुआ नहीं। हम बड़बड़ाए, अपनी शंकाएं जताई/' वे कान देकर सुनते रहे और हुंकारे..../हमारे कान पकड़कर हमें धमकाया/माफी माँगो- नहीं तो....'[12]

इस कविता में आदिवासी कवि ने अपने उस अहसास को चिन्हित किया है जिससे उसका लेखन फूटा है। यह कविता आदिवासी लेखन में उभर रही चेतना को परिभाषित और उस लेखन की जरूरत को रेखांकित करती है। आदिवासी साहित्य क्यों? यह कविता इस प्रश्न का जवाब भी देती है।

आदिवासी जीवन को महादेव टोप्पो की 'त्रासदी' शीर्षक कविता में खूबसूरत ढंग से प्रस्तुत किया गया है-

"***इस देश में पैदा होने का/मतलब क्या है/जानते हो भाई?***
नहीं?/देश में पैदा होने का मतलब है/ आदमी का
जातियों में बँट जाना/और गलती से अगर तुम हो गए पैदा जंगल में/
तो तुम कहलाओगे/आदिवासी-वनवासी-गिरीजन वगैरह-वगैरह/
आदमी तो कम से कम कहलाओगे नहीं।"[13]

(महादेव टोप्पो की 'त्रासदी' शीर्षक कविता से, आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, संपादक-रमणिका गुप्ता, पृ. 49)

आदिवासी कवयित्रियों में ग्रेस कुजूर की कविताएँ विद्रोह की ज्वालाग्नि उगलती हैं। हजारों वर्षों के अपने प्राकृतिक आवास जंगल को उजड़ते देख उनकी वाणी कह उठती है-

"***हे संगी/क्यों घूमते हो/झुलाते हुए खाली गुलेल/...../***

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com |

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

क्या तुम्हें अपनी धरती की/सेंधमारी सुनाई नहीं दे रही?/क्या
अब भी निहारते हो/अपने को/दामोदर और स्वर्ण रेखा के/कालेजल
में/किसने की है चोरी/भिनसरिया में ठेकी के संगीत की/
और उखाड़ी है किसने/आजी के जाने की कील?/ 'पुटुस तक को/
उखाड़ कर ले जाएँगे लोग/और धन/तुम खोजोगे उसकी बची
हुई जड़ों में/अपना झारखंड/हंडिया और दारू से सींचकर/क्या किसी ने उगाया है-/कोई जंगल?[14]

जंगल की रक्षा से ही आदिवासियों का अस्तित्व बचा रह सकता है। उनके पूर्वजों ने हजारों वर्षों से अपने साथ जंगल को और जंगल के साथ अपने को सुरक्षित रखा किन्तु अब दोनों के अस्तित्व का प्रश्न निर्माण हो गया है, इस कारण ग्रेस कुजूर आदिवासी नवयुवकों को ललकारते हुए कहती हैं-

"*तानों अपना तरकस।*
नहीं हुआ बोथरा अब तक
बिरसा आवा का तीर
सूरज के लाल 'गोढ़ा को
गला दो अपनी हथेलियों की
गर्मी से।"[15]

कवि विनायक तुकाराम ने अपने आपको कर्ण और एकलव्य की परम्परा से जोड़ते हुए आदिवासियों पर अनादि वर्षों से होने वाले अत्याचार की बात कही है। इसी अत्याचारी प्रवृत्ति को खत्म करने के लिए उनका कवि मन कह उठता है-

"*मैं जला डालूँगा प्रस्थापितों के*
निर्लज्ज दर्शन को
जो दर्शन मेरी आयु की
जात पूछता है।"[16]

आदिवासी साहित्यकारों में भुजंग मेश्राम एक चर्चित नाम है, जिनके प्रथम काव्य संग्रह 'उलगुलान' को राज्य एवं रा ष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। इसी काव्य संग्रह की 'ग्रांड फादर' कविता में खिश्चन पादरियों की पोल खोलते हु ए कहते हैं-

"*वे आए तब*
उनके हाथ में था बायबल
और हमारे हाथों में जमीन
वे बोले ईश्वर के पास भेद नहीं है
कोई काला या गोरा, करो प्रार्थना
बंद करो आँखें, हमने बंद की आँखें
जब आशा से आँखें खोली तो देखा
उनके हाथ में जमीं थी
और हमारे हाथ में बायबल।"[17]

भूमंडलीकरण के इस दौर में आदिवासियों की स्थिति ना घर की ना घाट की हो गई है। एक ओर भारत सरकार के सुनहरे सपने और दूसरी ओर अपनी मुठ्ठी से खिसकती जमीन के बीच यह पिसते जा रहे हैं। वामन शेलके आ दिवासी की इस स्थिति को अपनी कविता में इस प्रकार दर्शाते हैं-

"*सच्चा आदिवासी*
कटी पतंग की तरह भटक रहा है.....
कहते हैं हमारा देश
इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रहा है।"[18]

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com |

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

अनुज लुगुन आदिवासी कविता के एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनकी कविताएँ ज्यादा संख्या में प्रकाशित नहीं हुई हैं परन्तु जितनी भी कविताएँ सामने आयी हैं उनसे उनकी सजग संवेदनशील प्रश्नाकुल प्रतिरोधी कवि-संवेदना का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। "*पूँजीवादी विकास-प्रक्रिया से पैदा हुए अमानवीय-विस्थापन, आदिवासी राजनीति के बुर्जुआकरण, धर्मांतरण की राजनीति जैसे सवालों को एक साथ उठाते हुए वे हमारे समय में आदिवासियों द्वारा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए किये जा रहे प्रयासों को 'अघोषित उलगुलान की संज्ञा देते हैं। पूँजीवादी लूट-तंत्र में यह उलगुलान उन साधारण और बेबस आदिवासियों द्वारा लड़ा जा रहा है..*[13]

कंक्रीट से दबी पगडंडी की तरह/दबी रह जाती है जिनके जीवन
की पदचाप/बिल्कुल मौन।"[19]

मशहूर कवि हरिराम मीणा अपनी कविता में आदिवासियों की समस्याओं को चित्रित करते हुए लिखते हैं कि, उन्हों ने अब तब अपने लिए न कोई घर बनाया है और उन्हें इस बात का कोई अफसोस भी नहीं है-

"***हमें पता नहीं***
हम बन्दर की औलाद हैं
या भगवान की मंसा
मगर पैदा आदम-जात हीं हुए
नहीं छेड़ी हमने हिफाजती मुहिम
मौसमों के खिलाफ
घर नहीं बनाये
मगर बेघर महसूस नहीं किया
रहे अपरिग्रही फिर भी धनी. . . ."[20]

आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा का बहुत ही सुन्दर तथा बेबाक वर्णन निर्मला पुतुल की कविताओं में दिखाई पड़ता है। "आदिवासी लड़की की पीड़ा को मुखर करती हुई निर्मला पुतुल कहती हैं कि कोई भी आदिवासी लड़की किसी शहरी लड़के से ब्याहना पसंद नहीं करती, इसके कई कारण हैं- जैसे वह शहरों में बसता है, बाँसुरी की धुन से अपरिचित है, घर के सामने आँगन नहीं आदि-आदि पर इन सबमें एक कारण अहम है- जो उसकी दशा और मनोदशा की कहानी कह सकता है-[14]

"***बापू मुझे उतनी दूर मत ब्याहना***
वहाँ मुझे मिलने आने की खातिर
घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हें।"[21]

इतना ही नहीं शहरी लोगों की मानसिकता को बेनकाब करती हुई निर्मला पुतुल लिखती हैं-
"*ये इनके कालेपन से घृणा करते हैं, अनपढ़ होने पर व्यंग्य करते हैं, भाषा का मजाक उड़ाते हैं, हिकारत से देखते हैं, उनके हाथों से पानी नहीं पीते हैं, उनकी नजरों में इनका सब कुछ अप्रिय है किन्तु-*

प्रिय है तो बस मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने,
जंगल के फूल, फल, लकड़ियाँ
खेतों में उगी सब्जियाँ/घर की मुर्गियाँ
उन्हें प्रिय है
मेरी गदराई देह/मेरी मांस प्रिय है उन्हें।"[22]

प्रत्येक समाज को आगे बढ़ने के लिए केवल बाहरी बुराइयों से हीं नहीं लड़ना पड़ता बल्कि उसे अपने अन्दर की बुराईयों से भी लड़ना होता है। आदिवासी समाज भी इन बुराईयों से लड़ रहा है। आदिवासियों की जीवन चर्या में शराब से होने वाले दुष्परिणाम भी यहाँ व्यक्त किए गए हैं, अपने ही समाज के प्रधान या मुखिया की प्रवृत्ति को व्यक्त करती हुई निर्मला पुतुल कहती हैं-[15]

"***कैसा बिकाऊ है***

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com|

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

तुम्हारी बस्ती का प्रधान
जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में
रख देता है
पूरे गाँव को गिरवी
और ले जाता है
लकड़ियों के गठ्ठर की तरह
लादकर अपनी गाड़ियों में
तुम्हारी लड़कियों को
हजार पाँच-सौ
हथेलियों पर रखकर
.....
कहाँ गया वह परदेशी
जो शादी का ढ़ोंग रचाकर
तुम्हारे हीं घर में
तुम्हारी बहन के साथ
साल-दो-साल रहकर अचानक गायब हो गया?" [23]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आदिवासी जन-जीवन को हिन्दी कविता में महत्वपूर्ण स्थान मिला है। आज आदिवासियों ने अपनी मुक्ति के लिए अपने पारम्परिक ह थियार तीर और कमान को छोड़कर कलम उठा ली है। आगे आने वाला समय इस समाज का होगा। आदिवासी स माज भी अन्य समाज की भाँति अपनी संस्कृति एवं परम्पराओं को सुरक्षित रखते हुए उन्नति के मार्ग पर निरंतर अग्रसर है।[16]

निष्कर्ष

अपने समय और समाज की यथार्थ स्थिति का उद्घाटन निरूपण व प्रस्तुतीकरण करना ही साहित्य का लक्ष्य है। साहित्य युगीन तब बनता है जब वह अपने समय समाज व जन-सामान्य की पक्षधरता करता है उनसे जुड़ाव रखता है। साहित्यकार जब तक अपने युग समाज व परिस्थिति का चित्रण करने में सफल नहीं होगा तब तक वह अपनी पीढ़ी के साथ न्याय नहीं कर पायेगा। ज्यॉपाल सार्त्र ने ठीक ही कहा था- "एक युग का साहित्य अपने युग को आत्मसात करने के अतिरिक्त और क्या है"[24]

आदिवासी कविता आज के मनुष्य की हालात उसकी सामाजिक स्थिति और नियति की पहचान कर उससे जूझने और संघर्ष या आत्म-संघर्ष की दशाओं को अभिव्यक्ति देने का प्रयास करती है। समाज के हाशिए से छूटे हुए लोगों को मुख्य धारा में ले जाने की वकालत करती है। समकालीन कविता में स्त्री दलित और आदिवासी समाज की स्थिति पर पुनर्मूल्यांकन होने लगा है। [17]साहित्य और समाज दोनों ही में ये हमेशा हाशिए पर रहे हैं। संविधान में प्रावधान होने के बाद भी इन हाशिए के लोगों में अपने संघर्ष के खिलाफ व्यापक पैमाने पर संघर्ष करने की चेतना शक्ति विकसित हुई। जिसे उत्तर-आधुनिक समय में विमर्श के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में आदिवासी विमर्श इसका ज्वलंत प्रमाण है। आदिवासी किसी भी देश के मूल निवासी को कहा जाता है। भारत के संदर्भ में कहा जाये तो प्रायः जंगलों तथा पहाड़ी प्रदेषों में रहा करते हैं। जो अति पिछड़े हुए है। जंगलों तथा दुर्गम भागों में रहने वाली ये जातियाँ साधन सुविधाओं से वंचित तो हैं ही साथ ही अषिक्षा के कारण अपनी रूढ़ि और परम्परा के चंगुल से बाहर नहीं आ पायी है। आम धारणा है कि आदिवासी समाज के संदर्भ में किया जाने वाला चिंतन आदिवासी विमर्श है।[18]

प्रत्येक समय के समाज में सामान्यः दो शक्तियाँ विकसित होती रहती हैं। एक शोषक वर्ग जो परोपजीवी होकर अनेक प्रकार का पाखंड रचता है। दूसरी जन संघर्ष की शक्ति जो अस्तित्व के लिए सामाजिक मूल्यों के संरक्षण के लिए सदैव कार्यरत रहती है। समकालीन आदिवासी कविता इन्हीं मूल्यों के संरक्षण व बदलते मिजाज की कविता है। जिसमें शोषक वर्ग से मुक्ति तथा शोषित वर्ग के संघर्ष शक्ति को सुदृढ़ करने पर बल दिया गया है। आदिवासी कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से भोगे हुए यथार्थ और अपने समय की सामाजिक समस्याओं को व्यक्त किया है। आदिवासी कविताओं में नारी का जीवन-संघर्ष अस्तित्व संकट विस्थापन विभिन्न सामाजिक विद्रोह और शिक्षा जैसी समस्याएं प्रमुख रूप से देखी जा सकती है। निर्मला पुतुल-समस्याओं को सजगता से परखती हैं-आज की तारीख के साथ/कि गिरेंगी बूँदें लहू की धरती पर/उतना ही जनमेगीं निर्मला पुतुल/हवा में मुट्ठी बँधे हाथ लहराते हुए।[25]

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com |

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

आदिवासी स्त्रियों ने अपने हक और अधिकारों के लिए पुरूषों के साथ मिलकर समाज और शासकों का सामना किया है। स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को निडरता के साथ उठाती हैं। अस्तित्व व अस्मिता का संकट यदि है तब उसका विरोध विद्रोह के अलावा दूसरा हो ही क्या सकता है ग्रेस कुजूर समय की विसंगति को निरखती हुई उस पर व्यंग्य करती हैं- हे संगी। तानो अपना तरकस/नहीं हुआ है भोथरा अब तक/बिरसा आबा का तीर/मैं बनूंगी एक बार और सिनगी दई।[19]

समकालीन कविता के उन्नायक विनोद कुमार शुक्ल समय और सर्जना की गहरी पड़ताल करते हुए वर्तमान मनुष्य की मानवेतर क्रिया-कलापों को आदर्श समाज निर्माण में बाधा मानते हैं। मनुष्य कितना गैर जिम्मेदार व समाज व्यवस्था की निर्मिति में अपनी कर्तव्यनिष्ठता को भूल गया है उन्हीं विसंगति बोध की ओर इशारा करते हुए दिखायी पड़ते हैं- एक अकेली लड़की को/घने जंगल जाते हुए डर नहीं लगता/बाघ षेरों से डर नहीं लगता/पर महुआ लेकर गीदम के बाजार जाने से/डर लगता है।[26]

अनेक गैर आदिवासी कवियों ने सभ्यता संस्कृति अर्थव्यवस्था की सजग आलोचक की भाँति पड़ताल की है किन्तु जब आदिवासी स्वयं कलम उठाते हैं[32] तो वह उनकी अपनी स्वानुभूति व अपने साथ हो रहे अन्याय अत्याचार अस्तित्व संकट विस्थापन अस्मिता बोध नक्सलबाड़ी कहलाने का दंश असभ्य व बर्बर आदि विषेशणों पर अपने तरीके से विचार करते हैं। चूँकि वह उनका अपना भोगा हुआ यथार्थ होता है। हिन्दी ही नहीं अन्य भाषाओं के आदिवासी कवि भी प्रमुख रहे है- महादेव टोप्पो रामदयाल मुण्डा हरिराम मीणा लक्ष्मण टोपले उषा किरण भुजंग मे श्राम पाल लिंग दोह निर्मला पुतुल ग्रेस कुजूर वंदना टेटे अनुज लुगुन आदि। नाम उल्लेखनीय है। अनेक भाषाओं जैसे- वोडो संथाली खड़िया मुण्डा गारो मिजो आदि में आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है।[20]

विकास की धारा से अछूते आदिवासियों की एक प्रमुख समस्या असुरक्षा की है। वह जानवरों के बजाय मनुष्य से ही सर्वाधिक भयभीत है चूँकि भूमण्डलीकरण उदारीकरण एवं वैश्वीकरण का प्रभाव आज मनुष्य पर इतना अधिक हो गया है कि उसमें संवेदनात्मक शून्यता की स्थिति बनती जा रही है। आदिवासी कवि अपनी कविताओं में वंचितों की आवाज[31] दर्द पीड़ा को सम्पूर्णता में चित्रित कर रहे हैं। आदिवासी समाज अपनी संस्कृति अपनी अस्मिता और जीवन सत्य को पहचानने लगे हैं। विनोद कुमार विष्वकर्मा की कविता अपने ही घर में उल्लिखित है-अपने ही घर में/अपमानित-पीड़ित-शोषित/शिक्षा और मौलिक अधिकार से विहीन/अपनी पहचान छुपाये/सशंकित और अभिशप्त जीवन जी रहे हम/... हमने भी दिया है अपना बलिदान/अब हमें और दर किनार नहीं किया जा सकता।[27]

आदिवासी कवि अपनी कविता में परम्परा के साथ आधुनिकता व उससे भी एक कदम आगे उत्तर-आधुनिकता पर विचार करता हुआ भविष्य को चिन्हित करता है। आधुनिकता और परम्परा के अंतरद्वंद और मनुष्य के भविष्य की सूचना आदिवासी युवा कवि अनुज लुगुन की कविता देती है-कट रहे हैं वृक्ष/माफियाओं की कुल्हाड़ी से और बढ़ रहे हैं कंकरीट के जंगल/ दांडू जाए तो कहां जाए/कटते जंगल में/या बढ़ते जंगल में।[21]

विस्थापन आदिवासियों की एक प्रमुख समस्या रही है। भारत में विकास के नाम पर 1951-1990 के बीच करीब 2 करोड़ 13 लाख आदिवासी विस्थापित हुए हैं जिनमें से कोई 53 लाख का तो किसी तरह से पुनर्वास किया गया। शेष गणना की संज्ञा से परे हैं। विकास का आधार लेकर गाँव के गाँव बांधों अभ्यारणों के नाम पर सरकारों तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा अधिगृहीत कर लिए गये। जो आदिवासी विरोध किए उनको नक्सलवादी घोषित कर मार दिया गया। महिलाओं के साथ व्यापक स्तर पर अनाचार हुए। बाकी लोग शहर कस्बों की झुग्गियों में नारकीय जीवन जीने को अभिषप्त हो गये। (जनसत्ता 14 दिसम्बर 2014)

जंगल आदिवासी जीवन संस्कृति का एक प्रमुख उपादान है जिसमें उनका जीवन रचा बसा है। किन्तु जब वहाँ फैक्ट्रियाँ या अट्टालिकाएं खड़ी कर दी जाएगी उस समय आदिवासी कहाँ जायेगा। यहाँ जीवन मूल्य व अस्मिता का संकट है। आधुनिकताबोध जंगल काटने व विस्थापन में नहीं बल्कि विस्थापित को भी प्रश्रय देने में होनी चाहिए। कवि अनुज लुगुन विकास के इस पैमाने को प्रश्नांकित करते हुए उसकी धारणा और गति के बदलाव पर बल देते हैं।[28]

आदिवासी कौन है यह उनकी पहचान और इतिहास का प्रश्न है उन्हें जनजाति कहने से उनके अस्तित्व पर ही एक सवाल पैदा होता है। हमारे देष की राजनीतिक पार्टियाँ व उनके संगठित दल लम्बे अर्से से बनावासी के रूप में उनका नया नामकरण करने को प्रयासरत हैं। वे घर वापसी का नारा देकर उनकी पहचान मिटाने पर अमादा हैं। साथ ही धर्म के नाम पर उन्हें आपस में लड़ाकर उनकी संस्कृति को आपस में मिला लेना चाहती है।[22]

जल जंगल और जमीन से जुड़ाव आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग है। आदिवासी कविता उन बाहरी ताकतों को चिन्हित करती है। जो अपने लाभ के लिए उनके खिलाफ साजिश कर रहे हैं। अपनी स्वतंत्र चित्त प्रवृत्ति के बरवस बाहरी सत्ता की अधीनता को उन्होंने

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com |

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

सदैव नकारा है उसका जमकर प्रतिरोध किया है। वर्तमान में आदिवासियों का अस्तित्व संकट व पहचान की समस्या लगातार गहराती जा रही है। लोग उन्हें मनुष्य के तौर पर नहीं बल्कि वनवासी जंगली असभ्य मनुष्य के रूप में परिभाषित करते हैं। आदिवासी समाज की इस विडम्बनापूर्ण स्थिति को निर्मला पुतुल की कविता अभिव्यक्त करती है-इन खतरनाक शहरी जानवरों को पहचानों चुड़का सोरेन पहचानो/ .. तुम्हारे भोलेपन की ओर में/इस पेंचदार दुनिया में रहते/

निर्मला पुतुल बाहरी आततायियों से भोले-भाले आदिवासियों को सचेत करती हैं। उनकी मंशा को पहचानने की बात करती हैं जिससे आम आदिवासीजन उनकी चंगुल में न फँस सकें। वे एक अलग ही तेवर में प्रस्तुत होती हैं-ये वे लोग हैं जो हमारे ही विस्तर पर करते हैं/हमारी बस्ती का बलात्कार/ और हमारी ही जमीन पर खड़ा हो पूछते/हमसे हमारी औकात।

आदिवासी संचेतना से लबरेज युवा कवि मुन्ना साह की कविता डेहरी में व्यक्त की गयी चिंता भी आदिवासी समय और समाज की चिंता है। मुन्ना साह की कविता किसी विराट व भव्य की कामना नहीं करती और न ही विराट बुनती हैं बल्कि समय और समाज के बिखराव को महसूस कर मूल्यों के ह्रस का दिग्दर्षन कराती हैं-मिट्टी की बनी चीज/पत्थर के घर में/क्या शोभा देती हैइस्पात से बना डेहरी का बहुरूपिया/आ-गया था।/पत्थर दिल भी होते/पत्थर के घर भी/न मिट्टी बची/न मिट्टी सा हृदय।[23]

आदिवासी कृत्रिमता के बजाय प्रकृति में आस्था रखता है। प्रकृति समरसता के भाव पर अवलम्बित होती है। कहीं कोई भेद भाव नहीं करती सभी से प्रेम करती है।[30] किन्तु मनुष्य भौतिकतावादी होता जा रहा है। विकास की इस अंधी दौड़ में प्राकृतिक संसाधनों का अनुचित दोहन कर रहा है। जिससे प्राकृतिक असंतुलन पैदा हो रहा है। अनेक प्राकृतिक आपदाएं आती रहती हैं। मानवीय संवेदनाएं खत्म होती जा रही है। आदिवासियों तथा स्त्रियों की दयनीय दषा का जिम्मेदार कुछ हद तक हमारा सभ्य व तथाकथित पढ़ा लिखा समाज है। जो उन्हें उनके अधिकारों से वंचित कर रखा है। आदिवासियों के तन मन व अपमान की अनेक कहानियाँ हैं जिसे व्यक्त करने की आवष्यकता पर युवा कवि बल देता है-दर्द है सभी में/जुबां है बंद/आंखों में पानी है/पर हंसी का आवरण/निगल रहा है पीड़ा को/नहीं उसकी अभिव्यक्ति को/यह कैसी पीड़ा है धर्म अर्थ काम की/तन मन या अपमान की/प्रश्न अनंत हैं।[29]

आदिवासी कविता मुख्य धारा के साहित्य से हटकर अपनी एक अलग पहचान का साहित्य रचती है साथ ही आदिवासियों के जल जंगल जमीन जानवर भुखमरी कुपोषण तथा उनके सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है।[29] चूँकि आदिवासियों के प्रति मुख्यधारा का दृष्टिकोण नकारात्मक ही रहा है। इसलिए उनकी दृष्टि में वे अभी भी आदिवासी ही हैं। फिर भी वे आशान्वित हैं अपने सपनों को सकारात्मकता की ओर ले जाने के लिए -राहें खत्म नहीं हुई/कई और फासले तय करने हैं/शायद रास्ता एक ऐसा बनाना है।/जो अब तक तय नहीं किया गया।[24]

वैश्वीकरण के इस दौर में सर्वाधिक दोहन प्राकृतिक संसाधनों का हो रहा है। और ये प्राकृतिक संसाधन आदिवासी क्षेत्रों में ही हैं।[28] अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आदिवासी क्षेत्रों में आती हैं तथा उन्हें अनेक प्रकार के लुभावने सपने देकर उन्हें छल जाती हैं। राजनीतिक पार्टियाँ भी अपने स्वार्थसिद्धि के लिए कम्पनियों को अनुमति देती हैं साथ ही साथ अनेक दमनकारी नीतियाँ सरकार द्वारा ही बनायी जाती हैं। जिससे जो आदिवासी विरोध करता है उन्हें नक्सलवादी घोषित कर जेल भेज दिया जाता है। इस गम्भीर समस्या से निजात पाने के लिए वह छटपटा रहा है और भविष्य के बारे में सोचता है यहाँ रणेन्द्र की चिंता जायज है-हम बाकी दिन कैसे गुज़ारेंगे/इसका कोई अर्थ नहीं/हमारी रात/भरपूर काली रात होने का आश्वासन दे रही/क्षितिज पर एक भी तारा नहीं।[30]

आदिवासी कविता जीवन के साथ न्याय करती हुई समाकलन का सरलतम उपाय है। रुढ़ियों आडम्बरों से दूर वास्तविकता की एक नवीन जमीन की तलाश करती है जिसमें जीवन के विविध रंग घुले हुए हैं। भारत का आदिवासी समाज श्रमशील निष्ठावान और ईमानदार है। समाज के हाशिए पर रहने वाले लोगों का विकास सबसे पहले होना चाहिए। जहाँ एक ओर मुख्यधारा के पास तकनीकि व प्रौद्योगिकी है वहीं आदिवासियों के पास प्रतिभा श्रम व पारंपरिक ज्ञान है। हमें उस ज्ञान से परिचित होना चाहिए। आदिवासी कविता का मुख्य स्वर मुक्ति का है।[27] आदिवासी कवि अपनी कविताओं के माध्यम से रूढ़िवादिता अंधविश्वास शोषण व दासता के खिलाफ मुक्ति का आह्वाहन करते हैं। साथ ही अपनी दबी हुई आवाज को मुखरता प्रदान करते हैं। डॉ. रामदयाल मुंडा आदिवासियों को सर्वप्रथम शिक्षित करने के पक्ष में हैं क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा औजार है जिससे सभी प्रकार की समस्या का हल खोजा जा सकता है। वे कहते हैं-आदिवासी शिक्षा में अत्यधिक पिछड़े हुए रहे हैं। ये अपनी मातृभाषा में आसानी से शिक्षा हासिल कर सकते हैं। इस बात को लेकर हम सब प्रयत्नरत हैं।

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com|

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

आदिवासी कविताओं में प्रतिरोध की भावना है जो दिकू समाज की दकियानूसी मानसिकता वाले लोगों के खिलाफ एकजुट होकर संघर्ष करने की महती प्रेरणा देती है साथ ही मुक्ति की कामना करती है। वाहरू सोनवने की कविता स्टेज से इसे समझा जा सकता है- और वें मंच पर खड़े होकर/ हमारा दुःख हमसे कहते रहे/हमारा दुःख हमारा ही रहा/कभी उनका नहीं हो पाया।[25]

समाज में आर्थिक आधार पर कितनी असमानता है जबकि अनेक राजनीतिक पार्टियाँ व सरकारें समानता के झूठे दावे पेश करती हैं। इसी झूठी साजिश का पर्दाफाश करती हुईं राजेश जोशी की कविता एक आदिवासी लड़की की इच्छा समाज के यथार्थ को व्यक्त कर सच को सामने लाती है-लड़की की इच्छा है/छोटी से इच्छा/हाट इमलिया जाने की/ सौदा सूत कुछ नहीं लेना/तनिक सी इच्छा है/काजर की बिंदिया की/ तनिक सी इच्छा है/तोड़े की बिछिया की।[31]

आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है जो मानता है कि दृष्यमान जगत में प्रत्येक वस्तु की अपनी एक स्वतंत्र सत्ता है और वह सुंदर है। आदिवासी साहित्य जहाँ प्रकृति और प्रेम के विविध रूपों के साथ रचाव और बचाव का साहित्य है[26] वहीं समकालीन आदिवासी कविता लेखन में अस्मिता की खोज दिकुओं द्वारा किये गये और किये जा रहे शोषण के विविध रूपों को भी पहचानने लगा है। समकालीन आदिवासी कविता में प्रतिरोध है प्रतिशोध नहीं है। यह उसकी प्रमुख विषेशता है जिसे हमें न सिर्फ समझना चाहिए अपितु उसका सम्मान भी करना चाहिए। यह मनुष्यता की प्रगति का सम्प्रत्यय है।[32]

संदर्भ

1. डॉ. कंचन शर्मा – विचार पुनर्विचार और मूल्यांकन सहयोगी प्रकाशन दुर्गापुर वर्धमान पृष्ठ 80
2. निर्मला पुतुल – नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली पृष्ठ सं. 91
3. सं रमणिका गुप्ता – आदिवासी स्वर और नई शताब्दी वाणी प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ सं. 22.23
4. विनोद कुमार शुक्ल – सब कुछ होना बचा रहेगा राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ सं. 21
5. डॉ. नवीन नन्दवाना- (सं.) समवेत पत्रिका अंक 3 जुलाई 2014 पृष्ठ सं. 80.81
6. अनुज लुगुन – वसुधा 85 युवा संवाद
7. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली पृष्ठ सं. 22
8. वही पृष्ठ 54
9. मुन्ना साह- डेहरी आदिवासी चेतना की कविताएं स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ सं.15
10. वही पृष्ठ 36
11. हरिराम मीणा- (सं.) समकालीन आदिवासी कविता अलख प्रकाशन जयपुर पृष्ठ सं.93
12. रणेन्द्र- ग्लोबल गाँव के देवता भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली पृष्ठ सं. 74
13. दुर्गाराव बाणावतु भीमसिंह- (सं.) साक्षात्कारों में आदिवासी अलख प्रकाशन जयपुर पृष्ठ सं. 162
14. सं रमणिका गुप्ता- (सं.) आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ सं.110
15. राजेश जोशी- प्रतिनिधि कविताएं राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ सं. 24
16. UN Permanent Forum on Indigenous Issues (UN PFII)
17. Working Group on Indigenous Populations/Communities in Africa, African Commission on Human and Peoples' Rights (ACHPR)
18. UNEP Indigenous People's Website
19. IFAD and indigenous peoples (International Fund for Agricultural Development, IFAD)
20. Working Group on Indigenous Populations (WGIP)
21. friends of Peoples close to Nature (fPcN)
22. Survival International - Global movement for tribal peoples
23. International Work Group for Indigenous Affairs (IWGIA)
24. IPS Inter Press Service News on indigenous peoples from around the world
25. Indigenous Peoples Center for Documentation, Research and Information (doCip)
26. Australia Regrets For Its Aboriginal Natives
27. Pyara Kerketta Foundation a community effort of tribal pepole of Jharkhand, Indaia आदिवासी भाषा, संस्कृति और पहचान के लिए कार्यरत संस्थान
28. Janssen, D. F., Growing Up Sexually. Volume I. World Reference Atlas
29. Bemaadizing: An Interdisciplinary Journal of Indigenous Life (an online journal limited to Native Americans in North America).

| ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com |

| Volume 2, Issue 9, September 2019 |

30. Jharkhandi Bhasha Sahitya Sanskriti Akhra (11 आदिवासी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका)
31. Center for World Indigenous Studies (CWIS)
32. गोंडवाना समय